याज्ञवल्क्य

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति

श्रीनिवास बालभारती - 104

याज्ञवल्क्य

तेलुगु मूल
बी. राजगोपाल शर्मा

अनुवाद
सी. पद्मावती

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति
2013

Srinivasa Bala Bharati - 104
(Children Series)

YAGNAVALKYA

Telugu Version
B. Rajagopala Sarma

Hindi Translation by
C. Padmavathy

Editor-in-Chief
Prof. Ravva Sri Hari

T.T.D. Religious Publications Series No.959
©All Rights Reserved

First Edition - 2013

Copies :

Price :

Published by
L.V. Subrahmanyam, I.A.S.,
Executive Officer
Tirumala Tirupati Devasthanams
Tirupati.

Printed at
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati.

प्राक्कथन

बच्चों के हृदय पुष्पों की भांति निर्मल होते हैं। उत्तम कपूर से बढ़ कर सुवासित उन के दिलों में बढिया संस्कार पैदा करना है। यदि उन में हम अच्छे संस्कार डालते हैं तो चिर काल तक आदर्श जीवन बिताने की सुस्थिर नींव पड जाती है। बचपन में संस्कार प्राप्त बच्चे भावी पीढियों के लिए समुचित मार्ग दर्शन कर सकते हैं। इसलिए हमारे इन होनहार बच्चों को विरासत बने पौराणिक मूल्यों तथा इतिहास में निहित मानवता के मूल्यों का परिचय कराना अत्यंत आवश्यक है।

बिना लक्ष्य का जीवन निष्फल होता है। बच्चों को लक्ष्य की ओर प्रेरित कर उनके जीवन को सही मार्ग पर ले जाने की जिम्मेदारी बडों के ऊपर है। महान व्यक्तियों की आदर्शमय जीवनियों का परिचय करा कर उनमें प्रेरणा जगाने के उद्देश्य से 'श्रीनिवास बालभारती' का शुभारंभ किया गया है।

इस योजना का मुख्य लक्ष्य नैतिक मूल्यों के माधुर्य को बच्चों तथा सर्वत्र फैलाने का है। हमें यह जानकर अत्यंत आनंद हो रहा है कि बच्चे तथा परिवार के सभी लोग इन पुस्तकों का स्वागत कर रहे हैं। इससे तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् का मुख्य उद्देश्य कुछ हद तक सफल हो रहा है।

'श्रीनिवास बाल भारती' की योजना तैयार करके उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करवा कर कम कीमत पर सब को उपलब्ध कराने का प्रयास, करनेवाले प्रो.एस.बी रघुनाथाचार्य अभिनंदनीय हैं।

इस प्रकाशन में सहयोग देनेवाले लेखकों तथा कलाकारों के प्रति मैं अपना धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

कार्यकारी अधिकारी
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

प्राक्कथन

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। अगर वे बचपन में ही महोन्नत सज्जनों की जीवनियों के बारे में जानकारी लें, तो अपने भावी जीवन को उदात्त धरातल पर उज्ज्वल रूप से जीने के मौके को प्राप्त कर सकते हैं। उन महोन्नत सज्जनों के जीवन में घटित अनुभवों से हमारी भारतीय संस्कृति, जीवन में आचरणीय मूल धार्मिक सिद्धान्तों तथा नैतिक मूल्यों आदि को वे निश्चय ही सीख सकते हैं। आज की पाठशालाओं में इन विषयों को सिखाने की संभावना नहीं है।

उपरोक्त विषयों को ध्यान में रखकर तिरुमल तिरुपति देवस्थान के प्रचुरण विभाग ने डॉ.एस.वी.रघुनाथाचार्य के संपादन में स्थापित ''बाल भारती सीरीस'' के अन्तर्गत विविध लेखकों के द्वारा तेलुगु में रचित ऋषि-मुनियों व महोन्नत सज्जनों की जीवनियों से संबंधित लगभग १०० पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इनका पाठकों ने समादर किया और इसी प्रोत्साहन से प्रेरित होकर अन्य भाषाओं में भी इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। प्रारम्भिक तौर पर इनको अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है। इनके द्वारा बच्चे व जिज्ञासु पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुँचेगा।

इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का उद्धेश्य यही है कि बच्चे पढें और बडे लोग इनका अध्ययन कर, कहानियों के रूप में इनका वर्णन करें, तद्वारा बच्चों में सृजनात्मक शक्ति को बढा दें। फल स्वरूप बच्चों को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा निश्चय ही बचपन में ही मिलेगी।

आर. श्रीहरि
एडिटर-इन-चीफ
ति.ति.देवस्थानम्

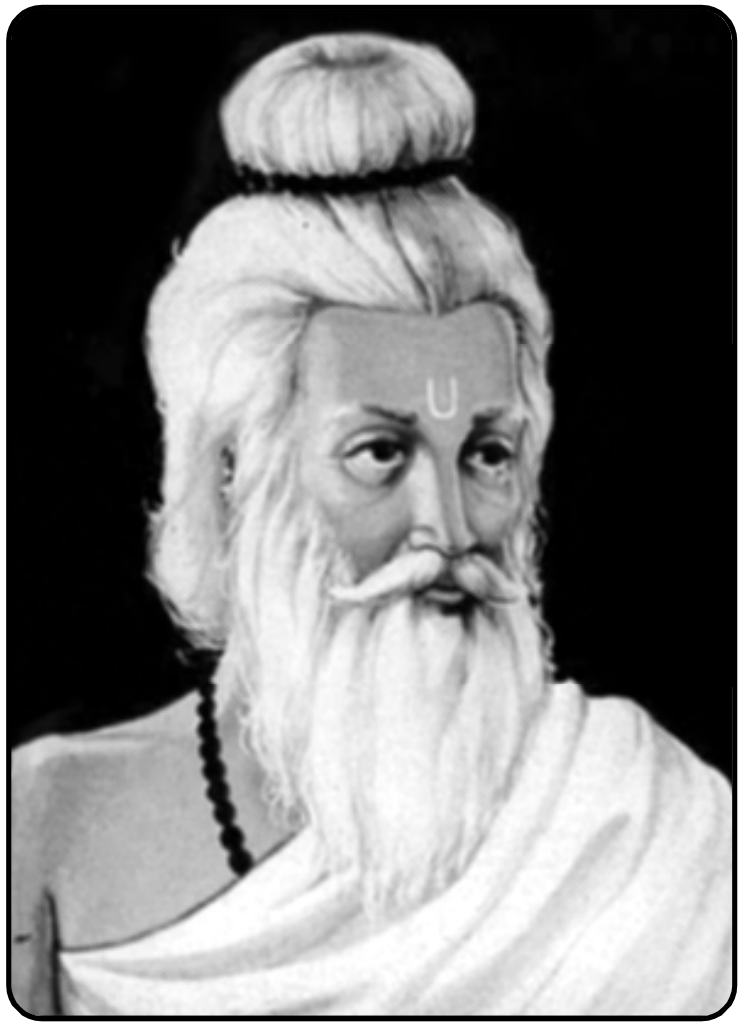

याज्ञवल्क्य

प्रशान्त आश्रम

ऋषि का वह एक विशाल आश्रम था। प्राची में उदित सूर्य की अरुण-किरणों के स्पर्श से वहाँ की वन लताएँ जगमगाती हैं। कोयल अंधकार से आलोक में आने के उत्साह से पेडों पर मधुर गान करते हैं। सूर्यदर्शन से पुलकित शुक-शारिकाएँ ऋग्वेद अंतर्गत सूर्य-सूक्त का आलापन करती हैं। सूर्योदय के पूर्व ही जागृत होकर ब्रह्मचारी-गण कंठस्थ वेदों का गान करते हुए गंगानदी में नहाने गए है; उनके लौटते देख हरिणें उनकी सन्ध्या-वंदन के लिए दर्भासन सिद्ध करते हैं। वे अग्निहोत्र में आहुति देनेवालों के लिए दर्भ संजोकर देते हैं। स्नान से निवृत्त होकर ब्रह्मचारी-गण पेडों के नीचे चौकट पर बैठते ही शुक उन्हें उस दिन प्रारंभ करनेवाले पाठों को दुहराते हैं। बछडे अपनी माँ के दूध छोडकर वृक्ष छाया में वेदमन्त्र सुनने केलिए तैयार हो गए हैं। आश्रम का वातावरण इतना पवित्र है कि वहाँ वेदों की ध्वनितरंगे से गूंज उठती हैं।

चमत्कार पुर का ब्रह्मरात

गंगानदी तट पर विलसित कुरुपांचाल देश इतना पवित्र माना जाता है कि यहीं से पहले भारत से विश्व में ज्ञान-किरणों का प्रसार हुआ है। उस प्रदोश में स्थित चमत्कारपुर वेदविदों का निलय है। वह गंगा के तट पर है। चमत्कारपुर एक सुविधाजनक प्रदेश था। यहाँ गुरुकुल और आश्रमों का निर्माण कई मुनियों ने किया था। ऊपर कथित आश्रम उन में एक है। इस आश्रम का कुलपति महर्षि ब्रह्मरात था। वह चारों वेदों, चार उपवेदों और षट्-शास्त्रों में

प्रवीण था। वह तीन नामों से विख्यात था। वेदान्ततत्त्व के जिज्ञासु होने से देवरात कहलाता था; क्रतुओं का मूलाधार वेद-वाङ्मय का अध्ययन तथा अध्यापन एवं यज्ञों को करते कराते रहने से 'यज्ञवल्कि' नाम से प्रसिद्ध गया था; अन्न-दान करते रहने से कुरुपांचाल देशों में उसे 'वाजसनि' भी कह कर पुकारते थे।

सुनंदा-ब्रह्मरात का विवाह

चमत्कारपुर के समीप वर्धमान नामक एक शहर था। उसमें शकल नामक एक ऋषिवर रहता था। उसने अपनी पुत्री सुनंदा का विवाह ब्रह्मरात के साथ किया। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ माना जाता है। उस आश्रम में ही समाज का कल्याण कर सकते हैं। वह गृहस्थाश्रम का स्वीकार करके अपनी पत्नी सुनंदा के साथ अपने आश्रम में आया। यज्ञ-याग क्रतु करते कराते अतिथि का सेवा-सत्कार करते थे अपने थे। शिष्यों को वात्सल्यपूर्वक वेदों का बोध करते और खाने खिलाते थे। उसकी पत्नी भी उसके सब कार्यों में सहयोग देती थी। दोनों सुख-जीवन बिताते थे।

पुत्र के लिए तपस्या

आदि दम्पति जैसे सुनंदा-ब्रह्मरात के लिए एक ही कमी थी जो उन्हें कांटे के समान चुभा करती थी। उसने यज्ञ-याग क्रतु करके देव-ऋण चुका दिया; स्वयं वेदाध्ययन करके शिष्यों से कराकर ऋषि-ऋण भी चुका सका था; अतिथि-सत्कार तथा अन्न-संतर्पणों से मानुष-ऋण भी चुकाया। पितृदेवताओं का ऋण चुका ने के लिए वंश-वृद्धि के लिए संतान नहीं हुई। एक बालक पैदा होता तो कितना अच्छा होता। इस

चिंता से मुक्त होने के लिए ब्रह्मरात के मन में संतान के लिए परमेश्वर का अनुग्रह पाने के लिए तप करने का विचार आया। उद्देश्य अपनी पत्नी के सामने रखा तो वह भी सहमत हो गयी। तपस्या के लिए सब प्रबंध किए गए।

ज्ञानी पुत्र का जन्म होगा

ब्रह्मरात वहाँ के समीप केदार - क्षेत्र गया और ग्यारह सालों तक देवदेव परमेश्वर की तपस्या की। उसके तपसे संतुष्ट होकर परमेश्वर ने दर्शन देकर पूछा कि तुम क्या चाहते हो। परमेश्वर की दिव्य मंगल मूर्ती को देखकर आनंद विभोर होकर बोला- ''हे परमेश्वर आपके दर्शन से मेरा जन्म सार्थक हुआ है। आप जैसा गुणसंपन्न पुत्र को प्रसाद में देकर मेरा जन्म धन्य कीजिए'' - ईश्वर ने कहा ''हे ब्रह्मरात तुम्हारी प्रार्थना समंजस है। तुम्हे ऐसा पुत्र होगा, जो गुणवान होने के साथ कर्म मार्ग में स्थित रह कर संसार को ब्रह्मतत्त्व का भी प्रबोध करेगा''। वर देकर ईश्वर अंतर्धान हो गए। ब्रह्मरात वर प्राप्त कर असीम आनंद से अपने आश्रम में आया। अपनी पत्नी से बात कही। वह भी पुत्र की कामना पूरी होने के लिए संतुष्ट हो गयी। बारह साल की अवधि में ब्रह्मरात आश्रम में जो जो काम पूरे नहीं हो सके उन्हें द्विगुणीकृत उत्साह से करने लगा था। कुछ ही दिनों में सुनंदा गर्भवती हुई और उसके पिता शकल ने सुनंदा को समयानुकूल सुख-सुविधाओं का आयोजन किया था। कार्तीक मास के शुक्ल दशमी के दिन शतभिषा नक्षत्र-युक्त शुभ लग्न में इतवार को सुनंदा ने बालक को जन्म दिया। हरिणों एवं छात्रों का आनंद असीम था। पुत्रोत्साह से ब्रह्मरात पुलकित हो गया।

शुभ-के उपलक्ष्य-में चमत्कारपुर, वर्धमान-पुर एवं कुरु-पांचाल देशों में उत्सव मनाया गया।

याज्ञवल्क्य का नामकरण

ब्रह्मरात महर्षि ने अपने पुत्र का जात-कर्म बहुत वैभव से किया और व्यास आदि महात्माओं ने बालक को आशीर्वाद दिया। आसपास के लोगों को अन्नदान किया। जो भी आए थे वे भोजन के बाद लौट ते समय बालक को अपने पितृ-सम महर्षि होने का आशीर्वाद देते। पिता के तीनों नामों से बालक को पुकारा भी था। उन तीनों नामों में बालक याज्ञवल्क्य नाम से विख्यात हो गया।

सूर्य के प्रति अलौकिक आनंद

माता-पिता बालक का लाड-प्यार से पोषण करने लगे। वह दिन दिना सौ गुना प्रवर्धमान होते हुए आश्रमवासियों के लिए नेत्रानंददायक होने लगा था। वह स्वयं ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर सब को जगाता था; माता उसे स्नान कराकर सजाने के बाद आश्रम-छात्र उसे अपनी गोद में लेने के लिए दौड लगाते थे। वह बालक तो अपने इष्ट छात्र पर कूद जाता था।छात्र उसे कई प्रकार खिलवाते थे। परंतु उसका प्रियतम खेल सूर्य भगवान की ओर देखना था। बाल भानु को देख बालक किलोरें लगाता था। उस बालक का आनंद ही छात्रों का आनंद था। सूर्य के प्रति अधिक आसक्ति थी।

बाल्यावस्था से स्वतंत्र व्यक्तित्व

याज्ञवल्क्य तीन साल का हो गया। उसका नटखट पन इतना बढ गया था कि अग्निहोत्र के लिए लाए गए दर्भों को छोटे-हरिणों

की मुहों में रखता था और कहीं से बछडे की 'अम्बा' पुकार कान में पडते ही उन्हें अपनी माँ-गायों के पास जाने छोड देता था। आश्रम के किसी भी प्राणी की पीडा नहीं देख सकता था। उसके स्पर्श से छात्रों में जो शारीरिक पीडाएँ होती थी वे झट दूर हो जाती थीं। इसे देखकर ब्रह्मरात मन ही मन प्रसन्ना होता था। किंतु दुःखदायक बात यही थी कि तीन वर्ष के बालक का ब्रह्मचारियों के साथ स्नान करना माता यह कैसे सह सकती? वह अपने बालक को नहलाना दुलारना दैव-कार्य सम मानती थी। इसलिए बालक को गंगास्नान करने के लिए माता असम्मत हुई। लेकिन बालक मानता नहीं था; माता को हार माननी पडी। ब्रह्मरात अपने लाल की स्वतंत्र व्यक्तित्व को देखकर संतुष्ट हुआ।

ब्रह्मरात का ब्रह्मानंद

आश्रम के सभी कार्य नियमित समय पर चलते थे। जो छात्र उदय के पहले स्नान करने आलसी होते थे उन्हें याज्ञवल्क्य के कारण अपना आलसीपन छोडना पडा। अस्वस्थ होने पर भी बालक को देखकर छात्र सजग रहते थे। ब्रह्मचारियों का सन्ध्या-वंदन, अग्निहोत्र ब्रह्मयज्ञ आदि को बालक श्रद्धा से देखता था। वृक्ष-छाया में वेदिका पर बैठे अध्ययन करते हुए ब्रह्मचारियों के पास जाकर शांत भाव से सुना करता था। उन्हें अवरोध न पहुँचाता था। बालक की चेष्टाओं को देखकर ब्रह्मरात आनंद-मग्न होता था कि ये सब भविष्य की शुभ-सूचनाएँ हैं और ऐसे पुत्र को पाकर अपने को धन्य मानता था।

दूसरा वामनमूर्ति

ब्रह्मरात के आश्रम में यह दुलार बालक सब की आँखों की पुतली था; दूसरी ओर बालक की बुद्धिग्राह्यता दिनों दिन बढती जाती थी। वेदों को समझने की उसकी आसक्ति बढते देखकर माता-पिता ने उसे ब्रह्मोपदेश देकर ब्रह्मविद्या सिखाने का निर्णय किया। पिता ने ब्राह्मणोत्तमों के समक्ष स्वयं याज्ञवल्क्य को मन्त्रोपदेश किया। कृष्णाजिनं के साथ हाथ में अश्वत्थदण्डधारी याज्ञवल्क्य विष्णु का अवतार वामन सदृश शोभित था। उस 'वटु' को देवताओं तथा ऋषियों ने ब्रह्मवेत्ता होकर वेद-वाङ्मय का पुनरुद्धरण करने का आशीर्वाद दिया।

अन्य गुरुकुल में प्रवेश

बालक को ब्रह्मोपदेश दिया गया। ब्रह्मरात ने स्वयं वेदाध्ययन कराना चाहा। पर उस आश्रम में याज्ञवल्क्य के रहते अन्य अंतेवासी उस बालक के प्रति प्रत्येक श्रद्धा-अनुराग दिखाएंगे जिससे उनके शिक्षण में अवरोध होगा। ऐसा सोचकर ब्रह्मरात ने दूसरे गुरुकुल मे भर्ती करना चाहा।

चतुर्वेदों का पारंगत हों

पिता ने सोच-विचारकर निर्णय किया कि व्यास महर्षि उस बालक के योग्य गुरु हैं। एक शुभदिन शुभमुहूर्त में अपने पुत्र को बुलाकर कहा-''तुम्हे वेद-विद्याभ्यास करना है। मैं तो वृद्ध होने के कारण इस आश्रम के भार से मुक्त होकर वानप्रस्थ लेना चाहता हूँ। हमारा निश्चय है कि तुम वेदव्यास से शिक्षा-दीक्षा पावें। उस

महात्मा के पास आज जाना है। अतः तुम अपनी माता की अनुमति एवं आशीर्वाद ले आओ।'' याज्ञवल्क्य अपनी माता के पास जाकर बोला-''माते 'वटु' को उत्तम गुरु के आश्रय में वेदाध्ययन करने का आदेश पिता ने दिया है; अतः मुझे अनुमति देकर आशीर्वाद दीजिए'' माता के हृदय में अकेला पुत्र दूर होने की चिंता और दूसरी ओर अपना पुत्र वेदविद्याप्रवीण बनने की इच्छा थी-उसने कहा- ''हे पुत्र तुम शीघ्र चारों वेदों में पारंगत होकर वापस आओ''-

व्यासाश्रम में वेद-भिक्षा की याचना

माता का आशीश पाकर वह अपने पिता ब्रह्मरात को साथ लेकर व्यास महर्षि के आश्रम में पहूँचा। आश्रम में कपिल-नेत्रों तथा कपिल जटाओं से युक्त प्रकाशमान वेदव्यास महर्षि के समीप पहुँचकर दण्डवत-प्रणाम किया। वेदव्यास ने उनका स्वागत करके उनके आवास का प्रबंध-करवाया; यात्रा की थकावट दूर होने के बाद पिता-पुत्र का कुशल-समाचार पूछा और आश्रम में आने का कारण भी पूछा। ब्रह्मरात ने विनय से निवेदन किया ''हे वेदमूर्ती, इस बालक को मैने ब्रह्मोपदेश किया है। अब वेदों के अध्ययन के लिए आप इसे अपना शिष्य बनाइए''- इस अभ्यर्थन को व्यास ने मान लिया। याज्ञवल्क्य को अपना शिष्य के रूप में स्वीकार किया। ब्रह्मरातने अपने पुत्र को हितोपदेश किया-'' हे याज्ञवल्क्य तुम कृष्णाजिन और मंत्रदण्ड का धारण मत छोडो। वेदाध्ययन में कभी अजागरूक न होओ। उच्चारण में अपस्वर अनर्थदायक होगा। वेद स्वर-प्रधान हैं; अतः स्वर-दोष से अर्थ-बदल जाता है। इससे शब्द

का विपरीत अर्थ-भी आ सकता है। अपने सहपाठियों से वाद-विवाद मत करो''- इस प्रकार समझाकर ब्रह्मरात अपने आश्रम वापस गए।

तीन वेदों का अध्ययन समाप्त

वेदव्यास अपने शिष्य को साथ लेकर ऋग्वेद के अध्यापन में प्रसिद्ध बाष्कल के पास गया और ऋग्वेद का उपदेश याज्ञवल्क्य को करने का आदेश दिया। अचिरकाल में ही ऋग्वेद का अध्ययन किया, जैमिनी महर्षि के पास सामवेद का, उद्दालक महर्षि के पास अथर्व वेद और व्यास की अनुमति से यजुर्वेद के अध्ययन के लिए शाकल्य महर्षि के पास गया।

यजुर्वेद का अभ्यास करने शाकल्य महर्षि के पास जाकर अपना गोत्र-प्रवर कहकर नमस्कार किया; और कहा कि व्यासमहर्षि ने आप के पास भेजा है; आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार कीजिए'' उन बातों से शाकल्य के शिष्य बोधायन तथा आपस्तंब का परिचय हुआ। याज्ञवल्क्य जब कभी अपने गुरुओं के साथ वेद-सभाएँ संपन्न होती थीं वहाँ जाता था और सहपाठियों की प्रशंसा का पात्र बनता था। ऐसे प्रतिभा-संपन्न विद्यार्थी के अपने आश्रम में आने से उसके साथ अध्ययन करने का अवकाश प्राप्त कर वे भी प्रसन्न हो गए।

गुरु के सामने एक समस्या आयी

शाकल्य ने याज्ञवल्क्य की प्रार्थना से उसे अपना शिष्य मान लिया। उसी दिन से यजुर्वेद के अध्ययन में इतना लीन हो गया कि बोधायन आदि से अपेक्षाकृत ज्ञान-संपन्न हो गया। शाकल्य अन्य शिष्यों को याज्ञवल्क्य को आदर्श मानने का आग्रह भी करता था।

परंतु एक बात तो गुरु को बहुत खटकती थी। वेद-विद्यार्थी के लिए अध्ययन के काल में वस्त्रधारण में सजधजकर रहना निषेध था। अध्ययन पूरा करते समय वे जटा-जूटों से लम्ब-नखों से स्नातकव्रत पूरा करते थे। पर याज्ञवल्क्य इस के विपरीत था। नित्य नहाकर शुभ्र वस्त्र-धारण के साथ बाल संजोकर रहता था जो आश्रम के नियमों के विपरीत था। गुरु भी उसके ज्ञान को देखकर कुछ नहीं कह सकता था। दूसरी ओर उसकी अलंकार-प्रियता सहपाठियों के द्वेष का भी कारण बन गया। पर विवशता से उन्हें चुप रहना पडा।

राजा की चिकित्सा में अपनी बारी

सुप्रिय नामक सूर्य-वंश का राजा वर्धमानपुर को राजधानी बनाकर राज्य करता था। शाकल्य का आश्रम उस राज्य के अंतर्गत होने से उस का पोषक राजा ही था। शाकल्य राजपुरोहित था। एक बार राजा रोगग्रस्त हो गया और अपने राज-पुरोहित को बुलवाकर उपाय पूछा। शाकल्य ने कहा कि दैव की प्रतिकूलता रोग का कारण है। राजा ने मंत्राक्षत और मंत्रजल को रोज एक आश्रमवासी छात्र से भिजवाने का आदेश शाकल्य को दिया। आश्रम लौटकर शाकल्य ने विषय शिष्यों से कहा और रोज एक-एक बारी बारी से राजा को मंत्रजल ले जाने का प्रबंध किया। इस कारण दिन एक छात्र राजा के अंतःपुर जाया करता था।

तुम जो चाहो सो करो

एक दिन याज्ञवल्क्य की बारी आयी। उस दिन वह सब से पहले जागकर अधिक संख्या में गायत्री-मन्त्र का जप और साथ

साथ रोग-निवारण के लिए उपयुक्त अथर्ववेद के भी मन्त्रों का विशेष जप किया। साफ-सुधरे भेष में तेजोवान हो राज-सौध पर गया। वह सुप्रिय महाराजा के मंदिर में गया। महाराज उसकी वेश-भूषा देखकर समझने लगा कि यह कहाँ का आश्रमवासी है जो इतना-अलंकृत है। इसमें अलंकार-प्रियता के सिवा मन्त्र-शक्ति कहाँ से आती है- राजा की दृष्टि अपनी ओर से हटाने के लिए याज्ञवल्क्य ने कहा - ''महाराज, मन्त्र-जल और अक्षत स्वीकार कीजिए''- राजा परिहास करते बोला - ''वेद-विद्यानिपुण जटाजूट धारी अंतेवासी के हाथ से देने पर भी रोग कम नहीं हुआ; ऐसी स्थिति में तुम जैसों के हाथ से मेरा रोग-निवारण कैसे होगा?'' याज्ञवल्क्य विनय से बोला -''महाराज मेरे गुरुजी की आज्ञा के अनुसार मैं इसे लाया हूँ। इस तीर्थ-जल को स्वीकारने की प्रार्थना करता हूँ''-

राजा क्रोध से बोला - ''तुम जो चाहो सो करो - मैं तो उसे छू भी नहीं सकता''

याज्ञवल्क्य भी कुपित हुआ पर अपने लाऐ हुए मंत्र-जल फिर आश्रम में वापस ले जाने की इच्छा नहीं हुई। वापस जाते समय वहाँ की अश्वशाला में अश्व को बांधने के एक खंभे पर उस जल को उंडेल कर सिर झुकाकर चला गया।

खंभा पल्लवित

मन्त्रजल के प्रभाव से वह खंभा कोपलों से पल्लवित और पुष्पित हो गयी और देखने में बहुत सुंदर लगा। वहाँ के नौकर-

चाकर इसे देखकर भौंचक्के रह गए। यह समाचार राजा को पहूँचाया गया और वह आश्चर्य करने लगा। उसके लिए लाया हुआ मंत्रजल व्यर्थ-होने से वह चिंतित होकर फर्माया कि दूसरे दिन भी उसी छात्र से मन्त्रजल भेजा जाय। सुप्रियमहाराज से भेजे हुए नौकर की खबर सुनकर गुरु ने याज्ञवल्क्य को अपने पास बुलाया। कितुं जब से राज-सौध से वापस आया है तब से याज्ञवल्क्य गंभीर हों गया था। सोच-विचार में मग्न हो गया था। उसके मौन का भंग करते हुए एक छात्र ने गुरु के बुलाने की बात कही। वह गुरु के पास गया। नमस्कार करके खडे हो गया। गुरु कहने लग - ''याज्ञवल्क्य तुम्हें मुख्य कार्य करना है। कल भी महाराजा ने तुम्हारे द्वारा ही मन्त्र-तीर्थ भिजवाने का आदेश भेजा है । तुम्हारा इतना सम्मान आश्रम के लिए भी गौरव का विषय है। महाराजा का आदेश मानकर कल जाओ।'' याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया - ''गुरूजी मेरी बारी जब आयेगी तब अवश्य जाऊँगा''-

''तुम्हारा कहना ठीक है। पर महाराजा का आदेश है कि कल ही जाना है। तुम यह सोच लो हम उस के पोषण में वेदाध्ययन करते हैं। उस के आदेश का उल्लंघन समीचीन नहीं है। कल तुम्हारा जाना ही हमारे लिए कल्याणकारक होगा।''

याज्ञवल्क्य जवाब देता है - ''गुरुजी आप ही ने सिखाया है कि युक्तायुक्त का विचार न करनेवाले घमंडी से हमारा व्यवहार कठिन होना चाहिए। महाराजा ने मेरा अपमान किया है। वह विज्ञ राजा का काम नहीं। कर्म का फल भोगने राजा और रकं में भेद नहीं होना

चाहिए। अपनी भूल के लिए जो नहीं पछताता है वह कल भी मेरे तीर्थ लेकर जाने से राजाधिकार से कुछ भी कर सकता है। इससे उसके घमंड दुगुना होगा। अतः मैं नहीं जा सकता''-

मुझ से सीखे गए पाठों को वमन करके चले जाओ।

शाकल्य को एक ओर याज्ञवल्क्य का कहना उचित लगा। दूसरी ओर याज्ञवल्क्य का धिक्कार सहने से राजा के क्रोध का भाजक हो जाऊँगा। इधर अन्य छात्र भी मेरा आदर कैसे करेंगे? ऐसा सोचकर गुरु बोला - ''याज्ञवल्क्य तुम ने गुरु की आज्ञा का धिक्कार किया है। इसलिए तुम ने जो कुछ मुझ से सीख लिया है वह सब यहाँ वमन करके जाओ। आश्रम का वातावरण गंभीर हो गया। तिनके का हिलना भी सुन पडनेवाला नीरव छा गया। याज्ञवल्क्य आँख मूंदकर ध्यानमग्न हो गया। बाल्यकाल से उसने जो योगसाधना की थी, उसकी सहायता से गुरु से जो वेदवाङ्मय का अध्ययन किया था, उसे अग्नि-कणों के रूप में वहीं वमन किया। ज्वालाओं से आश्रम प्रकाशमान् हो गया। याज्ञवल्क्य का मुख तेजरहित हो गया। सब अनिमष नेत्रों से देख रहे थे। वह अपने गुरु शाकल्य को नमस्कार करके सिर झुकाकर चला गया। शाकल्य को ज्ञात नहीं हुआ कि तेजोमय अग्निकणों को क्या करना चाहिए। उसने महर्षि व्यास की प्रार्थना मन ही मन की। व्यास ने तपोशक्ति से विषय समझ लिया। वहाँ आ पहूँचे। वे आकर बोले

''शाकल्य तुम्हें याज्ञवल्क्य के वर्तन से यह जान लेना था कि वह कारण-जन्मा है - खैर जो भूल हुई वह परहित के लिए हुई''

व्यास ने शाकल्य के शिष्यों को तीतर-पक्षियों का रूप दिया। उन से तेजस्वी वेदों के वमन का भक्षण कराया और वहाँ से चले गए।

ज्ञान-नेत्र प्रसाद करो

शाकल्याश्रम से निकलकर याज्ञवल्क्य हिमालय के समीप स्थित हाटकेश्वरम गया; वहाँ विश्वामित्र सरस में स्नानकर मनो-बुद्धिका लय कर गायत्री-मन्त्र का जप करने लगा। करुणामयी देवी माता अपने भक्तों की सदा रक्षा करती है। माता ने प्रत्यक्ष होकर याज्ञवल्क्य से पूछा- ''याज्ञवल्क्य तुम क्या चाहते हो?'' याज्ञवल्क्य बोला- ''हे जगज्जननी आप जानती हैं कि ऋषि-गण ज्ञान के लिए आप के बारे में तप करते हैं। मैं अपने गुरु के आग्रह से अज्ञानी हो गया हूँ। मुझे पुनः ज्ञान नेत्र प्रसाद कीजिए''- वेदमाता करुणा से बोली - ''याज्ञवल्क्य, प्राचीन काल में सोमासुर नामक राक्षस वेदों को लूट-लूट कर ले जाता था; उस समय सूर्य-भगवान उस से बचाकर वेदों का कुछ भाग अपने पास सुरक्षित रखा है। तुम उसका अनुग्रह प्राप्त करो और उन्हें अपने वश करके पुनः लोक में वेदों - का प्रचार करो''- इतना कहकर वह अदृश्य हो गयी।

सूक्ष्म शरीर से मेरा अनुकरण करो

वेदमाता के दर्शन से अपना जन्म धन्य मानकर याज्ञवल्क्य बाल्यावस्था से अपने इष्ट देवता और लोकादित्य सूर्य-भगवान के ध्यान में मग्न हो गया।

हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतवाजिनः।
वहन्ति भुवनालोक चक्षुषं तं नमाम्यहम्।।

प्रार्थना से भास्कर संतुष्ट हो गया और प्रत्यक्ष होकर बोला कि तुम किस लक्ष्य से यह ध्यान करते हो। याज्ञवल्क्य विनय से कहने लगा- '' हे भास्कर आप जानते हैं कि मेरी कैसी दुस्थिति हो गयी है। आप समस्त लोकों के नेत्र है; अतः अज्ञान रूपी अंधकार में विलाप करनेवाले मुझे ज्ञाननेत्र प्रसादित कीजीए'' सूर्य भगवान प्रत्युत्तर में बोले- ''याज्ञवल्क्य, संसार के लोग मेरी ओर देखने को भी भय भीत होते हैं। ऐसी दशा में तुम मेरे समीप रहकर अध्ययन करना चाहते हो। तुम्हारे साहस-कार्य से मैं प्रसन्न हो गया। तुम्हे देखने मात्र से विदित होता है कि तुम महान योग साधक हो। उस योगविद्या की सहायता से स्थूल-शरीर त्यजकर सूक्ष्म शरीर से मेरा अनुसरण करो। कई युगों से मेरे पास सुरक्षित वेदवाङ्मय तुम्हारे वश करूँगा'' -याज्ञवल्क्य सूर्यभगवान का अनुसरण करके तप्त कांचन की भाँति शुचि होकर शुक्ल-यजुर्वेद का अध्ययन करने लगा।

मेरा अनुग्रह सदा रहेगा

शुक्ल-यजुर्वेद का प्रचार अध्ययन मात्र से संभव नहीं होगा। कई पण्डितों से वाद-विवाद करके विजयी होना है। उसके लिए गंभीर धी-शक्ति चाहिए। सूर्य ने अपने शिष्य से कहा कि संसार के लिए तुम्हे उपकार करने का दायित्व है। अतः तुम देवी सरस्वती का तप करके उसे प्रसन्न कर लो। वह भी यही करना चाहता था। सूर्य भगवान को नमस्कार कर पुनः हटकेश्वर गया। वहाँ आसन जमाकर ध्यान मग्न हो गया। यह मन्त्र पठने लगाः-

यया विना जगत्सर्वं मूकन्मत्तवत्सदा।
वागाधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः।।

देवी ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हारे मन की कामना मैं ने जान ली। आज से तुम्हारे प्रति मेरा अनुग्रह सदा रहेगा। भूलोक में जो वेद-पण्डित है वे तुम्हारी धी-शक्ति के सामने नत मस्तक हो जायेंगे। तुम कर्म और ज्ञान-मार्ग का बोध विनूत्न शैली में कर सकोगे। इतना ही नहीं बल्कि यज्ञों और वेद-सभाओं में तुम अग्र-पूज्य बनोगे। आशीर्वाद देकर देवी अंतर्धान हो गयी।

याज्ञवल्क्य का प्रथम-शिष्य

सरस्वती के वर को पाकर वह गंगा नदी के तट पर्ण-कुटी बनाकर भास्कर से प्रसादित शुक्ल-यजुर्वेद तथा गायत्री-महा-मन्त्र का पुनश्चरण करते हुए कर्म-रत हो गया।

उसका यश कुरु-पांचाल देशों में व्याप्त होने लगा। जहाँ दो तीन वेद-पण्डित मिले आपस में याज्ञवल्क्य की ही बात किया करते थे। कण्व नामक बालक अपने माता-पिता की बात न सुनकर गंगा के तट पर घुमक्कड बन फिरते हुए गंगा तट पर पहूँचा। एक दिन उसे दूर से एक पर्ण-कुटी दीख पडी। वह भूखा था। खाने को कुछ पाने की आशा से वह उस कुटी के पास गया। वहाँ का दृश्य देखकर वह अपने को भूल गया। पुलकांकित होकर हाथ-जोडकर उस तेजोवान याज्ञवल्क्य को नमस्कार किया। उस समय वह पर्ण-कुटी के दरवाजा के पास बैठ ध्यान मग्न था और मध्याह्न मार्तान्ड की भाँति प्रकाशमान था। अपने पाद-स्पर्श से वह आँखें खोलकर देखता है तो

वह बालक विनय से बोला - ''महात्मा, आज तक आप के बारे सुनता था। अब ज्ञान-भास्कर जैसे प्रकाशवान् आप को देखकर मेरा अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो गया। आज तक मैं मूर्ख हो लक्ष्यहीन घूमता-फिरता था। आज से आप मुझे अपना शिष्य मान लीजिए। याज्ञवल्क्य ज्ञान-दृष्टि से समझ गया कि वह बालक अज्ञान से ज्ञान की ओर बढेगा और भविष्य में यजुर्वेद का प्रचार करेगा। इस प्रकार कण्व याज्ञवल्क्य का प्रथम शिष्य हो गया।

शिष्यों की परंपरा

कण्व याज्ञवल्क्य के पास यजुर्वेदाध्ययन करने लगा। कालांतर में उसके पास कई शिष्य आए। ऋग्वेद सहित सब वेदों का अध्ययन करते थे। पर याज्ञवल्क्य की यजुर्वेद के प्रति नितांत श्रद्धा थी। उस वेद पर शोध-कार्य करके उसकी पंद्रह शाखा ओं का विभजन किया। कण्व के साथ चौदह शिष्यों को उन शाखाओं के प्रतिनिधि बनाए जो इस प्रकार हैः- माध्यंदिन, सोपत्य, वैधेय, अर्थ, बौद्धक तापनीय, वत्स, जाबालि, केवल, अवट, पुण्ड्र, वैन, पराशर, और कण्व। इन पंद्रहों शाखाओं का स्वल्प स्वर-पाठ भेद से कण्व ने अध्ययन किया था। आज कण्व-शाखा मध्यंदिन-शाखा प्रचलित हैं।

कात्यायनी से विवाह

याज्ञवल्क्य शुक्ल-यजुर्वेद शाखा का नई रीतियों से बोध करा कर पण्डितों में सक्रियता जागृत की। कुछ पण्डित इस से ईर्षा करने पर भी अधिकाधिक पण्डित हर्षित हुए। जिसकी पुत्रिकाएँ होती थीं वे सब याज्ञवल्क्य को अपना जामाता बनाने छटपटाते थे।

मिथिलानगर समीप महर्षि कतु एक आश्रम में रहता था। देवी वरलक्ष्मी के कटाक्ष से उसे पुत्री का जन्म हुआ और नाम कात्यायनी था।

वह बालिका सद्गुणों की राशी थी और नित्य गौरी देवी की पूजिका थी। वह विवाह योग्य हुई। कतु अपनी पत्नी से सलाह करके याज्ञवल्क्य के पास गया और अपनी पुत्री का पाणि-ग्रहण करके अपने वंश को पवित्र करने की विनती की। याज्ञवल्क्य ने भी गृहस्थाश्रम स्वीकार करने आवश्यकता समझकर इस प्रस्ताव से सम्मत हुए। एक शुभ-लग्न में कात्यायनी याज्ञवल्क्य की धर्म-पत्नी बनकर उस के आश्रम में आई। उस दिन से याज्ञवल्क्य अपने पिता ब्रह्मरात के तीनों नामों को अधिक प्रसिद्ध करने लगा और पितृ-सम पुत्र का नाम पाया।

ब्रह्मदत्त का यज्ञ

देवताओं के लिए प्रिय यज्ञों को ऋषि-गण करते और कराते रहते हैं। एक नियम यह रखा गया था कि सूर्य भगवान के न होने पर यज्ञ नहीं करना है। इस से क्रतुओं के करने में विघ्न पडता था ऐसी ही कुछ कमियों को भगवान सूर्य से प्राप्त शुक्ल-यजुर्वेद के अनुसार याज्ञवल्क्य ने नव्य विधियों की रूप कल्पना की थी। इस का प्रतिपादन सब महर्षियों के समक्ष रखने के लिए उसने बादरायण के दौहित्र ब्रह्मदत्त से यज्ञ कराने का संकल्प किया। कुरु पांचाल देशों के सब महर्षियों को यज्ञ में भाग लेने स्वागत-पत्र भेजे और जिन्हें आह्वान नहीं मिला वे भी याज्ञवल्क्य द्वारा कराए जाने वाले यज्ञ को देखने पहूँचे। उनमें शाकल्य उद्दालक, श्वेतकेतु जैसे महान

ऋषि भी थे। यज्ञ के प्रारंभ में क्रतु के निर्वाह की पद्धति से सब संतुष्ट हुए। परंतु शाकल्य और उसके शिष्यों में ईर्षा पैदा हो गयी।

उन्होने ठान लिया कि यज्ञ का विघ्न करके याज्ञवल्क्य का पराभव करना चाहिए। शाकल्य खडे होकर सब से इस प्रकार कहने लगाः- ''हे महर्षियों आज यज्ञ का जो विधि-विधान यह करता है, उसे आज तक न हमने देखा न सुना। हम जैसे अनुभवी महर्षियों का अपमान करना इस यज्ञ-क्रतु का लक्ष्य-मालूम होता है। इसके पहले भी इसने कई कार्य किए हैं। किसी तन्त्र-विद्या से खंभे को वृक्ष बनाया था। अग्नि-रूप में प्राप्त विद्याओं का वमन कर सका था। अतः इसके ऐसे कार्य-कलापों के प्रति हमारी सख्त असम्मति है''- उद्वेग भरित उसकी बातों को सब ने सुन लिया। सब संयमित होकर सत्य जानने के कुतूहल से याज्ञवल्क्य की ओर देखने लगे। उन्होंने पूछा- हे याज्ञवल्क्य तुम्हारे द्वारा किए जानेवाले यज्ञ के मन्त्र किस वेद से उद्धृत हैं? किसके पास उनका अध्ययन किया है? हमें इनका सही विवरण देना है''-

याज्ञवल्क्य ने वहाँ के ब्राह्मणों को नमस्कार कर के इस प्रकार कहाः- हे महात्मन् आप के प्रश्न न्याय संगत हैं। उस यज्ञ का प्रारंभ इसलिए किया है कि आप सब को उसकी विशेषताएँ बतावे। सावधानी से सुनिए-ये मन्त्र शुक्ल-यजुर्वेद के अंतर्गत हैं। इसे 'अयातयामं 'अथवा' एकायनं भी कहते हैं। जब सोमकासुर इन्हे चुरा ले जाता था तब भास्कर (सूर्य भगवान्) ने उनकी रक्षा करके अपने यहाँ सुरक्षित रखा था। वेदमाता गायत्री के आदेश के अनुसार मैने उसे सूर्य से प्राप्त किया है''- उसकी बातों का अपहास्य करते

हुए शाकल्य को शिष्यों ने कहा- ''कहाँ दिव्य-प्रकाशक सूर्य और कहाँ अल्पज्ञ तुम? सूर्य किरणों को भूलोकवासी सहन नहीं कर सकते हैं। तब तो तुम भास्कर के पास गये हो तो भस्म हो गए होते।''

यज्ञ की समाप्ति

इस कोलाहल में चूडभाग, कहोल जैसे महर्षियों ने यज्ञ संबंधी क्लिष्ट प्रश्न किए जिनके समाधान याज्ञवल्क्य ने हेतुपूर्वक समझाया। शाकल्य के शिष्यों को समाधान देने के रूप में याज्ञवल्क्य ने अपने शरीर से अग्नि जैसी दिव्य काँति उत्पन्न की जिस से उनकी आँखे चकाचौंध हो गयी। उन्होंने उस तेज का उप-संहार करने की बिनती की। सब समझ गए कि इतने शक्तिवान का भास्कर का सान्निध्य पाना आश्चर्य की बात नहीं है। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। उसी समय से क्रतु की वही विधि लोकव्याप्त हो गयी।

गन्धर्व को तत्त्व का उपदेश

याज्ञवल्क्य जिस प्रकार क्रतुओं की नव्य रीतियों के प्रवर्तक हो गया उसी प्रकार वेदान्त तत्त्व निरूपण में नए विषयों को बहिर्गत करके ब्रह्मर्षियों में अग्रगण्य हो गया। शुक्ल-यजुर्वेदीय अंतिम अध्याय जो ईशावास्योपनिषत् है वह तत्त्व-चिंतन का शिरोमणि माना जाता है। याज्ञवल्क्य की प्रतिभा से प्रभावित होकर विश्वावसु नामक एक-गन्धर्व ने याज्ञवल्क्य के पास आकर विनय से कहा कि आप से ब्रह्म-विद्या प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझ पर अनुग्रह कीजिए। याज्ञवल्क्य ने कहा -''हे गन्धर्व तुम बहुत दूर से आए हो। तुम जो पूछना चाहते

हो पूछ लो मैं जो जानता हूँ वह बताऊँगा। गन्धर्व ने तीन प्रश्न किए जो इस प्रकार हैं:

1) जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञेय है वह कौन सा है?
2) ज्ञानी कौन कहलाता है?
3) अज्ञानी किसे कह सकते हैं?

याज्ञवल्क्य इन तीनों जटिल प्रश्नों का सोचविचार कर जवाब दिया। गन्धर्व संतुष्ट होकर बोला-'हे महर्षि, जिन प्रश्नों के उचित समाधान अब तक नहीं पा सका था उनका आज आप ने सही समाधान दिया। संदेह नहीं कि इतने प्रज्ञावान आप ब्रह्मवेत्ताओं में अग्रगण्य रहेंगे। आपका विज्ञान शाश्वत रहें।''

राजा जनक का आह्वान

राजा जनक मिथिलानगर राजधानी बनाकर राज्य करता था। वह चक्रवर्ति होने पर भी प्रजा को अपनी संतान सम देखने के कारण उसका नाम भी सार्थक हो गया था। वह प्रजा का प्रिय राजा और देव-ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धावान भी था। उसके दरबार में सदा पण्डित-गोष्ठियाँ चलता थीं जिनसे राजा नए विषय जान लेता था; ब्राह्मणों का सम्मान सैकडों और हजारों गायों के दान से करता था।

राजा जनक को किसी के द्वारा याज्ञवल्क्य की प्रतिभा-संपन्नता मालूम हुई। ब्रह्मदत्त द्वारा करवाया यज्ञ, गन्धर्व को तत्त्व बोध करना भी मालूम हो गया। ऐसे महान व्यक्ति से ज्ञान पाने के लिए उस का मिथिलानगर में आह्वान किया। इधर याज्ञवल्क्य जनक की आध्यात्मिक जिज्ञासा के बारे में जान चुका था। इसलिए वह अपनी पत्नी कात्यायनी के साथ मिथिलानगर पहूँचा।

कितने दिनों के बाद दर्शन का भाग्य मिला!

राजा जनक का मन्त्री मित्रय था जो सब विषयों में राजा का ही अनुवर्तन करता था। उसकी एक पुत्री थी। उिसका नाम मैत्रेयी था। उसे बाल्यावस्था से ही वेदान्त चर्चा के प्रति विशेष रुचि थी। इसका कारण यह था कि उसका लाड-प्यार से जिसने पोषण किया था वह महान ब्रह्मवादिनी गार्गि थी और बालिका की मौसी थी। गार्गि ने ब्रह्मचर्यव्रत-दीक्षा से चारों वेदों का ज्ञान तथा उपनिषदों का आत्मज्ञान उसके लिए करतलामलक था। उसके प्रभाव से मैत्रेयी भी उपनिषदों का अध्ययन अपनी मौसी के पास करती थी। उसका पिता भी ज्ञान-संपन्न होने से पुत्री की रुचि देखकर संतुष्ट था।

मैत्रेयी को यह बात बहुत आनंद देती थी कि याज्ञवल्क्य का मिथिलानगर में आगमन होगा। उस महर्षि के बारे में अपनी मौसी से सुनकर उस ज्ञानवान् के दर्शन की आकांक्षा रखती थी। राजा जनक ने याज्ञवल्क्य के आवास का प्रबंध- मित्रय के घर में ही कराया।

बाल्यावस्था में ही कई प्रश्न

याज्ञवल्क्य के आगमन का समाचार मिलते ही सारा नगर स्वागत-तोरणों से सजाया गया। जब याज्ञवल्क्य और चक्रवर्ती जनक साथ साथ आने लगे तब ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज दोनों के संगम को देखकर नगर के सब लोग आनंद से फूले न समाए। जनक याज्ञवल्क्य को मित्रय के नियमित आवास पर छोड अंतःपुर गए। इधर मैत्रेयी उस महर्षि की पत्नी को देखने के लिए ललायत

थी। उसके पास जाकर महर्षि और उसके पाण्डित्य के बारे में कई प्रश्न किए। कात्यायिनी को उस बालिका का भोलापन तथा चितंनात्मक वेद-विज्ञान संबंधी प्रश्नों को सुनकर संतोष हुआ। वह सोचने लगी कि विवाहयोग्य इस उम्र मे घर-द्वार आदि की बातें छोडकर वेदान्त से इतनी आसक्ति कैसे हो गयी। वह आश्चर्य करने लगी।

सभा का आयोजन

राजा ने सभा बुलाई जिसमें आरुणि पुत्र श्वेतकेतु और सत्यग्र के पुत्र सोमशुष्म राजा के दर्शनार्थ जो आए थे सभा में भाग लेने ठहर गए। जनक ने सभा का प्रारंभ करके अग्निहोत्र की प्रस्तावना की। अग्निहोत्र के बारे में आए हुए पण्डित अपने अपने विचार व्यक्त करने लगे। परंतु जनक को उन समाधानों से संतुष्टि नहीं मिली। याज्ञवल्क्य ने सही समाधान दिया। इसके लिए पुरस्कार के रूप में सौ गायों का समर्पण किया। तदनंतर प्रकृति के तत्त्व, सृष्टि तत्त्व, काल गमन संबंधी रहस्यात्मक प्रश्नों के समाधान याज्ञवल्क्य ने दिए। जनक साष्टांग नमस्कार करके बोले - ''ऋषिवर, आप की प्रतिभा वर्णनातीत है। अपके ज्ञान पूर्ण पाण्डित्य से यह साबित होता है कि आप ब्रह्मवेत्ताओं में अग्रगण्य हैं। आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करके ब्रह्मोपदेश कीजिएगा''। याज्ञवल्क्य बोले- ''हे सार्वभौम जनक,कुरु पांचाल देशों के ब्रह्मनिष्ठों में जो प्रथम माना जायेगा उसे आप गुरु मानना समीचीन है।इसके लिए वेदान्त-सभा की आयोजना कीजिए और पाण्डित्य प्रकर्ष में जो विजयी होता है उसे अग्रगण्य मान लीजिएगा।''

भूरि दक्षिणा

उसकी सूचना के अनुसार जनक ने भारी सभा का आयोजन किया।'भूरि दक्षिणा' नामक यज्ञ करने का निश्चय किया। राजा ने अपने मंत्रि मित्रय द्वारा इस यज्ञ में भाग लेने के लिए समस्त पण्डित-ब्राह्मणों को आह्वान-पत्र भेजे। जिन्हें आह्वान न मिले वे भी जनक की उदारता देखने आए।

पुरोहितों से निश्चित सुमुहूर्त में यज्ञ प्रारंभ हुआ। यज्ञ के अंत में राजा जनक ने अवबृथस्नान करने के बाद पण्डितों की गोष्ठी चलायी। इस गोष्ठी में अश्वल, आर्तभाग, भुज्य, कहोल, उषस्तु, शाकल्य जैसे उद्दण्ड उपस्थित थे। ब्रह्मवादिनी गार्गि और मैत्रेयी भी वहाँ बैठी हुई थीं। मैत्रेयी की महर्षि के प्रति प्रत्येक आसक्ति थी।

सर्वश्रेष्ठ कौन हैं

चक्रवर्ती जनक सभा में प्रवेश कर अपने उन्नत आसन पर बैठते ही सभा निश्शब्द हो गयी। राजा जनक अपने पुरोहित की ओर देखता है; पुरोहित ने हाथ के इशारे से सभा प्रारंभ करने को कहा। जनक गंभीर हो बोले- ''हे ब्राह्मणोत्तम, आप सब के सहयोग से यज्ञ तो पूरा हुआ है। इसके सिवा मैं जो जो कार्य संपन्न करता हूँ उनमें हाथ देकर उन्हें आप शुभ बनाते हैं। इसके लिए मेरा हार्दिक नमस्कार स्वीकारिए। मुझ में यह जिज्ञासा बहुत दिनों से है कि ब्रह्म-विद्या का बोध पाऊँ।

इन गायों को अपने आश्रम ले जाइए

कुरु पांचाल देशों में जो अद्वितीय ब्रह्मवेत्ता है उसे मैं अपना गुरु मानना चाहता हूँ। आप में से जो अपने को अग्रगण्य मानता है,

वह उस कोने में सोने के कोशें से सज्जित हजार गायें हैं; उन्हे आप ले जा सकते हैं; नियम यह है कि गायों को हांककर ले जाते समय कोई तत्त्व-संबंधी प्रश्न करें तो जवाब देकर जाना है।'' राजा की बातें सुनकर सब मुहँ लटकाए बैठ गए। कोई भी एक पग आगे नहीं बढ़ा सका। याज्ञवल्क्य उठकर सभा के मध्य भाग में आया; अपने पास सामवेद का अध्ययन करनेवाले शिष्य सौम्य और सामश्रव को बुलाकर उन गायों को अपने आश्रम ले चलाने को कहा। उसके साहस को देखकर सब को आश्चर्य हुआ। कइयों ने कई प्रकार से अवहेलना भी की।

तुमने यह साहस कैसे किया?

सभा में सब से वयोवृद्ध ऋषि अश्वल आगे बढकर बोला - '' ''हे याज्ञवल्क्य, इतनी भरी सभा में इतने वृद्ध महर्षियों के समक्ष तुम अपने को श्रेष्ठ कैसे मान सकते हो? इसके पहले क्या तुम किसी सभा में विजयी हुए हो? किसी समस्या का परिष्कार किया है? ऐसी योग्यता के बिना यह साहस कैसे कर सके हो''- याज्ञवल्क्य तुरंत अश्वल और सभा सब को नमस्कार करके बोला- ''हे महर्षि-गण, मैने घमंड से यह काम नहीं किया कि मैं ही सब से श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ। मैं सदा यज्ञ करते और कराते रहता हूँ जिनके लिए घी और गाय का दूध बहुत आवश्यक है। इसलिए इन गायों की मुझे बहुत आवश्यकता है। इसलिए ऐसा साहस किया है। राजा के कहे अनुसार आप में से जो ब्रह्म-निष्ठ निकले वही इन्हें ले जा सकता हैं

याज्ञवल्क्य प्रथम पूज्य है

इन बातों को सुनकर सब ब्राह्मण मौन हो गए। शाकल्य और अश्वल प्रश्न करने आगे सभा मध्य आए। अश्वल ने पूछा-यज्ञ से संबंधित होता कौन है?'' ऐसे ही कई प्रश्न किए जिनके याज्ञवल्क्य ने सही उत्तर दिए। अश्वल ऊँचे स्वर में बोले - ''हे पण्डितों इस सभा में मैं याज्ञवल्क्य को प्रथम पूज्य मानता हूँ'' - आर्तभाग ने पूछा -''ग्रहों की संख्या कितनी है? अतिग्रह कितने हैं- ''आदि प्रश्न पूछे। याज्ञवल्क्य ने सब के उचित समाधान दिए। इसी प्रकार कहोल, उषस्तु, उद्दालक आदि ने प्रश्न किए और अपनी हार मान ली। जनक ने सारी सभा को एक बार देखा कि और कोई प्रश्न करेंगे कि नहीं। ब्रह्मवादिनी गार्गि सभा को नमस्कार करके पूछने लगी - ''हे महर्षि, भूमि, अग्नि, जल, वायु इन तत्त्वों का मूल क्या है?'' गार्गि के प्रश्न करने की रीति और उसकी तार्किक शक्ति देखकर याज्ञवल्क्य को आश्चर्य हुआ। उसने उन सब प्रश्नों का हेनुसम्मत समाधान दिए। राजा जनक ने गार्गि की प्रतिभा की स्तुति की। गार्गि सभा के महर्षियों से बोली - ''हे विप्रवर, आप को याज्ञवल्क्य के तत्त्व ज्ञान का सामना करना असंभव है। आप इस पर विजयी नहीं हो सकते। सभा की समाप्ति ही श्रेयस्कर है''। इन बातों को सुनकर मैत्रेयी की आँखें दिप्तिमान हो गयीं।

उचित दण्ड पाना चाहिए

शाकल्य उठ खडा हुआ। वह 'बहुदक्षिणा' यज्ञ में अपने शिष्यों के साथ आया था। वह गार्गि की बातें सुनकर आग बबूला हो उठा।

वह किसी न किसी तरह अपने विपरीत तर्क से याज्ञवल्क्य को हराना चाहता था। शाकल्य के खडे ही होने वाले थे याज्ञवल्क्य उसकी चालाकी को समझ गया और उसने कहा - ''हे शाकल्य महर्षि आप का मुझ से चर्चा करना हर्षदायक है। मेरी एक शर्त है। हम दोनों में से कोई भी विपरीत वाद करें अथवा स्वयं न जान सकनेवाले प्रश्न करें तो दण्ड पाना ही चाहिए। देखिए- मैं इस दर्भा में प्राण प्रतिष्ठा करता हूँ। उक्त नियमों का उल्लंघन करने से अथवा हार जाने से यह दर्भा उनके सिर का खण्डन करेगा। क्या यह नियम आप को सम्मत है?'' शाकल्यने उद्वेग से विमूढ होकर उस शर्त को मान लिया।

शाकल्य की मूर्खता

शाकल्य प्रश्न करने लगा''-1) देवताओं की संख्या कितनी है? 2) रुद्र कितने हैं? 3) आदित्य कौन हैं?''- याज्ञवल्क्य ने सब के सही समाधान दिए और पूछा- ''हे शाकल्य, वेदों के अंत शिरोभाग औपनिषत्पुरुष के बारे में आप जो जानते हैं उसका विवरण दीजिए''- शाकल्य को समाधान न मालूम था। बर्स, नियम के अनुसार उसका सिर शरीर से अलग होकर नीचे गिर पडा। सभा हाहाकारों से भर गयी। विप्रवर सब अनेक रीतियों से व्याख्या करने लगे। कुछ भी हो याज्ञवल्क्य पर ब्राह्मण-हत्या का दोष लगाया गया।

शाकल्य का पुनर्जीवित होना

राजा जनक ने देखा कि सभा का कोलाहल बढता जाता है। राजा ने सूर्य-तेज सम प्रकाशित याज्ञवल्क्य से कहा - ''हे महात्मा,

इसी सभा में यह निर्णय हो गया है कि सर्व-प्रथम ब्रह्म-निष्ठ हैं। इस बहुदक्षिण को आप स्वीकार करके मुझे ब्रह्मोपदेश कीजिए। मेरी प्रार्थना है कि इस अपयश से मुझे बचाइए कि राजा जनक के समक्ष उसकी सभा में ब्रह्महत्या हुई है।'' याज्ञवल्क्य ने शांत हो कर जनक का अभ्यर्थन सुन लिया और 'पुनर्जन्म' मन्त्र का उच्चारण किया; अपने कमण्डल से जल लेकर उस शाकल्य पर छिटकाया। अद्भुत हुआ कि शाकल्य उठ बैठा। सारी सभा जय-जय निनादों से गूंज उठी। शाकल्य ने भी जय-जय कहा। राजा जनक अपने आसन से उतरकर याज्ञवल्क्य का दण्डवत् प्रणाम किया और गोदान की सूचना के रूप में याज्ञवल्क्य के हाथ में जल-तर्पण किया। याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी सहित शिष्य और गायों को लेकर आश्रम वापस गया।

इसके साथ मेरा विवाह होना चाहिए

मैत्रेयी जनक के 'बहुदक्षिणा-यज्ञ' आदि से अंत तक देख सकी; उस सभा के मध्य नक्षत्र-गण मध्य चन्द्र समान विराजमान याज्ञवल्क्य को देखकर मुग्ध हो गयी। उसकी मौसी ब्रह्मवादिनी गार्गी का भी याज्ञवल्क्य के हाथ में हार जाना देखकर चकित हुई। उसकी धी-शक्ति, वाग्झरि और साहस देखकर पण्डित भी लज्जित हुए। मैत्रेयी मन ही मन सोचने लगी कि राजा जनक के पूज्य गुरु उस महात्मा से वेद प्रतिपादित विषयों का ज्ञान पाना चाहिए। यदि कुमरी के लिए वह कोई अडचन हो तो उस महान ज्ञानी से विवाह के लिए भी सिद्ध होना चाहिए। महर्षि विवाहित हैं। पर कात्यायनी बडी साध्वी है। मेरी कामना को वह पूरी कर सकती है। उसी समय

गार्गि मैत्रेयी के पास आयी और संदर्भ से उसकी इच्छा जान कर उसे मित्रय से बताया।

मित्रय अपनी पुत्री की इच्छा जानकर संतोषित हुआ। वह याज्ञवल्क्य की सम्मति पाने के लिए उसके आश्रम में गया। अकस्मात् आए हुए मन्त्री का स्वागत-सत्कार आदि करने के उपरांत याज्ञवल्क्य ने आगमन का कारण पूछा। मित्रय ने सविनय अपनी पुत्री की इच्छा व्यक्त की।

मैं सम्मत हूँ

याज्ञवल्क्य मुस्कुराता हुआ बोला कि मैत्रेयी बहुत उदात्त है पर मैं तो विवाहित हूँ-यह आप जानते हैं। कात्यायनी की सम्मति के बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। उस संदर्भ में वहीं बैठी हुई कात्यायनी ने कहा - ''हे नाथ, मैत्रेयी का स्वभाव मैं जानती हूँ। छोटी उम्र में उसका तत्त्वचिंतन देखकर मैं चकित हो गयी। मेरे ख्याल से वह तो कारण-जन्मी है। आप उसकी इच्छा पूरा करें तो मेरी कोई अपनि नहीं होगी। मैत्रेयी की ब्रह्मविद्या के प्रति जो तीव्र आकांक्षा थी उसे समझकर याज्ञवल्क्य उससे विवाह के लिए सम्मत हुआ।

मिथिलानगर में कात्यायनी देवी और राजा जनक के समक्ष उन दोनों का विवाह धूमधाम से हुआ।

आज से मैं आप का दास हूँ

याज्ञवल्क्य के मिथिला में रहते समय जनक अनेकानेक तात्त्विक विषयों का ज्ञान पाता रहा। प्रतिदिन नए विषयों की ज्ञान प्राप्ति से

संतुष्ट जनक एक दिन सौ गाय दान देता तो दूसरे दिन हजारों गायों को पुरस्कार के रूप में देता था। एक दिन राजा बहुत प्रसन्न होकर कहा - ''भगवान मैं अपने राज्य के साथ आत्मसमर्पण करता हूँ। स्वीकार कीजिए। आज से मैं आप का दास हूँ-''

याज्ञवल्क्य ने हंसते हुए जवाब दिया - ''हे सम्राट,देह-सहित-मोक्ष तुम्हारो लिए सिद्ध है। मुझे जिस राज्य का समर्पण तुम ने किया है उसका तुम मेरे प्रतिनिधि के रूप में शासन करो''- जनक ने इस बात को मान लिया। याज्ञवल्क्य श्रीदेवी और भूदेवी सहित विष्णुमूर्ति की भाँति कात्यायनी और मैत्रेयी सहित अपने आश्रम लौट आए।

वानप्रस्थाश्रम

याज्ञवल्क्य मैत्रेयी के साथ विवाह करके अपने आश्रम में लौट आने पर अपने विजय सम्मान आदि के लिए गर्व नहीं करता था। उसने अपने अपार विज्ञान और अनुभवों से अपनी मातृभूमि के लिए गृहस्थ की तरह जो करना था, वह सब पूरा करने का निश्चय कर लिया। उसने अपने पंद्रहों शिष्यों को शुक्लयजुर्वेद का जो नित्य बोध करता था, उसके अर्थ और व्याख्या के लिए 'शतपथ' नामक बृहत ग्रन्थ की रचना की। विशेष रूप से एक 'स्मृतिग्रन्थ' की भी रचना की,जिसमें वर्णाश्रम, आचार-व्यवहार, राजनैतिक विधियाँ, नागरिक के कर्तव्य, प्रायश्चित्त-काण्ड आदि को तीन भागों में विभजित किया। यही याज्ञवल्क्य-ग्रन्थ के नाम से प्रचलित है। अनेक वंश के पुरोगमन के लिए कात्यायनी के द्वारा चन्द्रकान्त, महामेध और विजय नामक तीन पुत्र हुए। अपनी शरण में ब्रह्मोपदेश प्राप्त राजा जनक को

'सदेह-मुक्ति' प्रदान की और गार्गि को योगविद्या में प्रवीण किया। यह ग्रन्थ याज्ञवल्क्यगीत नाम से प्रचलित है। अपने आश्रम में वेद-विद्या के अध्यापन कार्य के लिए कण्व आदि को नियुक्त किया। इस प्रकार अपने दायित्व के भार से मुक्त होकर वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया।

तिनके के समान है

वन में एकान्त वास से मुनि जैसे रहते हुए मोक्ष के योग्य बनने का याज्ञवल्क्य ने निश्चय किया। उसने अपने दोनो पत्नियों को बुलाया और कहा कि आज तक जो संपत्ति मेरे अधीन में है उसके दो भाग करके तुम दोनों में बाँटना चाहता हूँ। कात्यायनी मौन रह गयी। मैत्रेयी अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए बोली- ''भगवान, जो धन मेरे भाग में आयेगा उसके साथ समस्त पृथ्वी को हस्तगत करने पर क्या अमृतत्त्व की प्राप्ति होगी?'' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया - ''यह कभी साध्य नहीं हो सकता''। मैत्रेयी फिर बोली - ''ऐसा संभव नहीं है तो लौकिक संपत्ति मेरे लिए तिनके के समान है''।

बृहदारण्यकोपनिषत्

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी का दृढ संकल्प देखकर कहा- ''हे मैत्रेयी तुम्हारी बातें मेरे लिए अमृत सदृश हैं। तुमने यह सिद्ध किया है कि पत्नी पति की प्रियतमा होने का अंतरार्थ यही है। तुम भी मेरे साथ वन में आओ। तुम्हे अमृतत्त्व-दायक ब्रह्मविद्या का बोध करूँगा''- मैत्रेयी संतुष्ट होकर अपने पतिदेव को नमस्कार करके उसके साथ अरण्य-जीवन बिताने चली। वनके वातावरण में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से वेदान्त-चर्चा करते हुए जीवन व्यतीत करता रहा। राजा जनक

और गार्गि अत्रि-मुनि आदि से तत्त्व संबंधी कई शंकाओं को उसने अपनी अद्वितीय प्रज्ञा से दूर किया था। इन चर्चाओं का बृहत रूप 'बृहदारण्यकोपनिषत्' नाम से प्रसिद्ध है। अरण्य में अपने पास आए हुए ऋषि-मुनियों का जो संवाद चला वही अरण्योपनिषत् अथवा 'बृहदारण्यकोपनिषत्' नाम से प्रचलित हो गया।

हमारा जीवन धन्य

एक बार याज्ञवल्क्य के पास कुछ महर्षियों ने आकर पूछा कि ऋषि सार्वभौम सन्यास-आश्रम के बारे में हमें समझाइए। याज्ञवल्क्य प्रसन्न होकर शान्त गंभीर स्वर से कहने लगा -

''हे महर्षियों, मानव को संपूर्ण जीवन बिताकर मोक्ष-साधना के लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ,वानप्रस्थ और सन्यास-इन चार आश्रमों की पंरपरा हमारे पूर्वजों ने स्थापित की है। इन चारों आश्रमों के धर्मों का पालन करनेवाला अवश्य मोक्ष पाता है। यदि कोई ब्रह्मचर्य में ही निष्ठा से विरक्त रहता है तो उसे सन्यास लेने का अधिकार प्राप्त होता है। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम से भी सीधे सन्यास हो सकता है। इसके लिए आवश्यक विधि-विधानों का भी विवरण दिया। इन नूतन विधियों को जानकर महर्षि-गण ने अपना जन्म धन्य माना।

* * *